१८५७ की क्रांति में आदिवासियों की भूमिका

डॉ. धर्मवीर यादव

भारत की आजादी की लड़ाई से सन् १८५७ या उसके बाद में प्राणों की आहुति देने वाले वीर शहीदों में कुछ के नाम भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे गए हैं। किन्तु १८५७ ई. से पहले और बाद भी आदिवासी समुदायों के वीरों और स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों में अधिकांश के नाम गुमनामी की गर्त में विलीन हो गए। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान ऐसे अनेक आदिवासी वीर सपूत पैदा हुए हैं जिन्होंने अपने वतन की आजादी के लिए अपनी जान की कुर्बानी दे दी।[i] सन् १८५६ में महान आदिवासी क्रांतिकारी धुर्वाराव माडिया ने ब्रिटिश साम्राज्य से लिंगा गिरी-बस्तर के मुक्ति संग्राम के लिए सशस्त्र विद्रोह का बिगुल फूक दिया था। ३ मार्च, १८५६ ई. को धुर्वाराव और अंग्रेज सैनिकों के बीच चिंतलवार में युद्ध हुआ धुर्वाराव और तीन हजार आदिवासी सैनिकों ने अंग्रेजों के दाँत खट्टे कर दिए, किन्तु लंबी लड़ाई के बीच आधुनिक हथियारों से लैस अंग्रेजी सेना ने धुर्वाराव को पकड़ लिया और ५ मार्च १८५६ ई. को उसे फाँसी दे दी।[ii]

सन् १७७४ से सन् १५१० के दौरान बस्तर ने दस बार संघर्ष की रणभेदी फूँकी। सन् १७७४ में भूमक से लेकर सन् १५१० को भूमकाल तक क्रांतिकारी आंदोलन बस्तर के क्रमिक संघर्ष, जिजिविषा और अद्भुत साहस की रक्त रंजित गाथा है।[iii] शहीद वीर नारायण सिंह सन् १८५७ के महासमर के महान क्रांतिकारी थे। इन्होंने कंपनी सरकार को खुली चुनौती दी।[iv] प्रजा और किसानों के पक्ष में खड़े होकर उन्होंने स्वाधीनता संग्राम का नवाचार किया। ब्रिटिश सरकार के खजाने को लूट कर भूखे आदिवासियों में बांट दिया था।

आदिवासी शहीदों में हंगा माझी, आयतू महरा, एड़का, कोला, ठेका, भीमा बिज्जा तथा वैंड्रा आदि भूमकाल के ऐसे शहीद हैं जिन्हें देश तो क्या बस्तर या छत्तीसगढ़ भी विस्मृत कर बैठा है।[v]
आदिवासी विरांगनाओं में गुमनाम शहीदों में प्रफुल्ल कुमारी देवी, रमोतिन बाई आदि प्रमुख नायिका हैं, जो गुमनाम हैं। भारत सरकार को इनका इतिहास और देश के लिए किया गया त्याग दर्ज करवाना चाहिए।

भारत के छत्तीसगढ़ राज्य में ब्रिटिश कंपनी सरकार के विरुद्ध सन १७९५ में पहला विद्रोह 'भोपालपटनम' के नाम से प्रसिद्ध है। इस विद्रोहि की खासियत यह थी कि कंपनी सरकार के कैप्टन जेटी. ब्लंट अप्रैल सन १७९५ में अपनी सेना के साथ बस्तर-प्रवेश करना चाहते थे किंतु बस्तर नरेश

दरियाव देव के गोंड सैनिकों ने उन्हें भोपालपटनम में रोक दिया और युद्ध हुआ। इसमें अनेकों अनाम आदिवासी सैनिक शहीद हुए।[vi]

बस्तर १८५४ ई. में पूरी तरह अंग्रेजी शासन के अधीन हो गया था। मार्च १८५६ ई. के अंत तक दक्षिण बस्तर में महान आदिवासी क्रांतिकारी धुर्वाराव माडिया के नेतृत्व में ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध आंदोलन बहुत तेज था। लिंगागिरी में चल रही लड़ाई के नेता धुर्वाराव थे। ग्लसफर्ड लिखते हैं- धुखराव माडिया आदिवासी थे उन्होंने अंग्रेजी शासन की कभी परवाह नहीं की इसलिए ब्रिटिश सरकार उनसे नाराज़ रहती थी। अवसर देखते ही १८५६ ई. में धुर्वाराव ने युद्ध का विगुल बजा दिया। उसने बस्तर के राजा भैरवदेव को इस स्वतंत्रता की लड़ाई में आने को भी निवेदित किया किंतु वे नहीं आए।

ब्रिटिश अधिकारी इलियट (१८५६ ई.) लिखते हैं कि आदिवासी धुर्वाराव के कुशल नेतृत्व में आदिवासी अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध क्रांति का विगुल बजा दिया। आदिवासियों ने गाँवों को लूटना प्रारंभ कर दिया। अंग्रेजों की माल से लदी बैलगाड़ियों को अपने वश में कर लिया। दक्षिण बस्तर में धुर्वाराव अपनी सैनिक गतिविधियों का केंद्र पहाड़ियों को बनाए हुए थे। वे पूरी तरह गुरिल्ल युद्ध लड़ रहे थे। इसी युद्ध के अंभ्यस्त भी थे। इस युद्ध कला से वे अंग्रेजों और अंग्रेजों का साथ देने वाले लोगों पर लगातार हमला करते थे।

३ मार्च, १८५६ ई. को ऐतिहासिक लड़ाई चिंतलनार में हुई। अपने तीन हजार साथियों के साथ महानायक धुर्वाराव चिंतलनार की पहाड़ियों में घात लगा कर बैठा हुआ था। वहाँ से प्रातः आठ बजे गुजरने वाली अंग्रेजों की सेना पर आक्रमण कर दिया। यह लड़ाई सांयकाल साढ़े तीन बजे तक चली। इस घटना के चश्मदीद ब्रिटिश अधिकारियों के अनुसार आदिवासियों ने यहाँ कड़ा मुकाबला किया था। विद्रोह को दबाने के लिए भोपालपटनम का जमींदार अंग्रेजी सेना के साथ था वह घायल हो गया। ४६० आदिवासी मडिया औरतों तथा बच्चों को बंदी बना लिया गया, जिसमें धुर्वाराव की पत्नी और बच्चे भी थे और लगातार लड़ते हुए धुर्वाराव पकड़ लिया गया और उसे फाँसी दी गई। उसकी विरासत को छीनकर पुरस्कार भोपालपटनम के जमींदार को दिया गया जो अंग्रेजों का साथ था।[vii]

महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी धुर्वाराव जिस विरासत को बचाने की लड़ाई लड़ रहे थे, उस पर विरासत के रूप सौंदर्य पर अंग्रेज कर्नल ए.आई.आर., ग्लसफर्ड ने मार्च-अप्रैल १८६८ ई. में शाल वनों की यात्रा करते की और कुछ समय बाद उसने दूसरी यात्रा और उस पर लिखा- 'बस्तर में अभी तक कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ पश्चिमी भागों के जंगल सूखे हैं, किंतु पूर्व में शाल के वन प्रारंभ हो जाते हैं। उनकी एक हस्भिरी पंक्ति है, जैसे प्रकृति ने नहीं, मनुष्यों ने योजनाबद्ध ढंग से लगाया हो। मैंने और मेरे मित्रों ने मुग्धभाव से बस्तर को देखा है। हम इस पर मोहित हैं।[viii] ऐसे सुंदर बस्तर पर अंग्रेजों के आधिपत्य के विरोध में विराट असुर पुरखे धुर्वाराव इसी विरासत को बचाने की लड़ाई लड़ रहे थे।

अंग्रेजों ने बस्तर के आदिवासियों का ही ह्रास नहीं किया बल्कि उनकी निगाह बस्तर के मूल्यवान साल वनों पर भी थी। अंग्रेज जंगल काटते रहे इसका सतत् विरोध आदिवासी १८५९ ई. तक करते रहे। कर्नल ए.आई.आर. ग्लसफर्ड अपनी डायरी[ix] में लिखते हैं - *बस्तर एक समय के बाद गोरों का साम्राज्यवादी शिकारगाह बन गया। गोरे, आदिवासियों को अपना दास मानने लगे। सन् १८७६ तक बस्तर हाथियों तथा वन भैंसों के लिए प्रसिद्ध था। किन्तु अंग्रेजों के आने के साथ अधिकांशतः मूल्यवान जानवर पूँजी उत्पादन के लिए मारे जाने लगे और बस्तर के जंगलों का भारी शोषण शुरु हो गया। ये संपूर्ण सामूहिक परिस्थितियाँ आदिवासियों को ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध लड़ने के लिए विवश कर रही थीं। इन्हीं जल-जंगल-जमीन की लड़ाई लड़ने के लिए आदिवासियों ने अपने तीरकमान उठा लिए।*

ब्रिटिश राज के बस्तर में हस्तक्षेप और तदंतर कथित सुधारों की बस्तर के आम आदिवासियों में जिक्र प्रतिक्रिया हुई।[x]

आदिवासी क्षेत्रों में १८५७ ई. की क्रांति में देश की ऊँची जाति के लोग आदिवासियों को दबाने के लिए अंग्रेजों से मिल गए थे। जिसमें जमींदार, महन्त, सामंत, महाजन बने हुए उच्च जाति के लोग थे।[xi]

अंडमान के आदिवासियों ने १७ मई, १८७९ ई. को अंग्रेजों से युद्ध किया। १८५७ ई. के प्रमुख स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को अंग्रेजों ने चुन-चुनकर एकत्रित किया और इन्हें एक ऐसी जगह ले जाकर रखने की योजना बनाई जहाँ ये भारत की स्वतंत्रता की गतिविधि में शामिल हो सके और पूरी तरह दूर रहे। ऐसी स्थिति में वे स्वतंत्रता सेनानियों का जहाजी बेड़ा लेकर अंडमान निकोबार द्विप समूह गए। वहाँ पहुँचते ही आदिवासियों ने तीर कमान के साथ उनका जोहार किया।

अंडमान पर जब अंग्रेज जहाज से उतरे तो आदिवासियों को तीर का सामना करते हुए कई मर गए कई घायल हो गए। उनके तीर में विष होता था इस प्रकार आदिवासियों ने अंग्रेजों को कड़ी चुनौती दी। किसी प्रकार वे अंडमान पर उतर सके वो भी घने रात के अंधेरे में स्वतंत्रता सेनानियों का जहाज भी कैद रखा।

आदिवासियों और अंग्रेजों के बीच इस लड़ाई का भारत के इतिहास लेखन में राष्ट्र निर्माण में उनकी भूमिका और योगदान को पर्याप्त श्रेय नहीं दिया गया है और स्वतंत्रता संग्राम में उनकी भूमिका को पूरी तरह से नजर अंदाज कर दिया गया है।[xii]

मध्य प्रदेश की 'सुरसी' आदिवासी महिला ने अपने बेटे 'भीम' को अंग्रेजों के विरुद्ध खड़ा किया वह भी शहीद हुआ। मंडला के गोंड आदिवासियों और झारखंड के ब्रिदोही आदिवासियों के गौरवपूर्ण अध्याय को भी इतिहास में अपेक्षित जगह नहीं मिली। यह आधुनिक राष्ट्र निर्माण में प्रवंचित वर्ग की भूमिका को इतिहासविदों द्वारा जमींदोज कर देने की मानसिकता है।

इस प्रकार हम देखते है कि आदिवासी दलित, ओबीसी द्वारा दिए गए असहाय और औपनिवेशिक इतिहास[xiii] लेखन से पूरी तरह अलग है । इस तरह जन के रूप में इतिहास की सीमा-रेखाओं को सक्रिय और[xiv] सचेत ढंग से पुनर्परिभाषित किया जा रहा है ।

---

[i] शरण उराव २०१५:६९ वीर बुद्ध भगतः कोल्हन-विद्रोह का शहीद १८३२

[ii] सुधीर, भुमकाल का युयुत्सु महानाथ २००३:०४

[iii] उपरोक्त

[iv] उपरोक्त २००३:०३

[v] प्रो. जे.आर. वाल्यानी, बस्तर के क्रांतिदूत १९८२ :८२

[vi] सुधीर २००३ :०७

[vii] सुधीर २००३ :२३

[viii] सुधीर २००३ : १५

[ix] कर्नल ए.आई.आर. ग्लसफर्ड की प्रसिद्ध डायरी १८८० : ६८

[x] सुधीर २००३ : १९

[xi]एम.आर. विद्रोही, दलित दस्तावेज १९८९: ७४

[xii] दिनकर १९९० : २३

[xiii] नारायण २०१४: ९१